Sanvahak, Vol.-1; Issue-2 (Oct.-Dec.) 2025 : PP-24-28

Sanvahak (संवाहक)

A Peer Reviewed, Multidisciplinary (All Subjects) & Multilingual (All Languages) Quarterly Research journal

ISSN : 3108-1347 (Online)
Vol.-1; Issue-2 (Oct.-Dec,) 2025
Page No.- 24-28
©2025 **Sanvahak**
https:// sanvahak.gyanvividha.com
Author's :

डॉ. वंदना तिवारी

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान
श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर म.प्र.

Corresponding Author :

डॉ. वंदना तिवारी

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान
श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर म.प्र.

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में जातिवाद

सारांश : भारत विविधतापूर्ण देश है। यहां की भौगोलिक दशाओं में अनेक धर्म, संस्कृति, समुदाय एवं जाति के लोग अपनी मातृभूमि से जुड़ाव रखते हुए विविधता में एकता को समेटे हुए, वसुदैव कुटुंबकम् की विचारधाराओं से ओत-प्रोत, आपसी भाई चारे की भावना के साथ निवास करते हैं। स्वतंत्रता पश्चात भारतीय संविधान के निर्माण में हमारे संविधान निर्माताओं ने भी इसी विचारधारा से प्रेरित होकर जातीय भावना से ऊपर उठकर धर्म निरपेक्ष, देश की एकता अखंडता एवं बंधुत्व की भावना को भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सम्मिलित किया है। किंतु जब संविधान का निर्माण हुआ तथा सरकारों के संचालन हेतु संरचनात्मक संस्थाएं अस्तित्व में आई तो इसका प्रभाव जाति व्यवस्था पर भी दिखाई पड़ने लगा। वहीं जब निर्वाचन आयोग का गठन हुआ तो वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन प्रक्रिया प्रारंभ हुई, इस चुनाव प्रक्रिया को प्रभावित करने में जातीय संस्थाएं अचानक अस्तित्व में आने लगी क्योंकि भारतीय लोकतंत्र में निर्वाचन एक निष्पक्ष प्रक्रिया है, ऐसे में जातीय समीकरण एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया है, क्योंकि अधिकतम संख्या में मतों का मूल्य इन्हीं वर्गों पर निर्भर रहता है।

बीज शब्द : जातिवाद, भौगोलिक दशाएं, वसुधैव कुटुंबकम्, धर्मनिरपेक्ष, निर्वाचन आयोग, वयस्क मताधिकार।

प्रस्तावना : वर्तमान परिपेक्ष्य में यदि देखा जाए तो भारतीय राज्यव्यवस्था में जातिवाद एक प्रमुख चुनौती बन गई है जिसने सबसे अधिक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित किया है। चाहे वह केन्द्रीय स्तर पर हो या राज्यस्तर पर हो, हालांकि इसने भारतीय राजनीति को सकारात्म क एवं नकारात्मक दोनों तरीकों से प्रभावित किया है। अगर नकारात्मक रुप में देखा जाए तो यह राजनीतिक दल के रूप में अक्सर भाई-भतीजावाद, जातिगत राजनीतिक विभाजन और ध्रुवीकरण को बढ़ावा देने का प्रयास किया है। जो एक सफल लोकतंत्र

के लिए खतरा है वहीं अगर सकारात्मक रूप में देखा जाएं तो इसका जुड़ाव समुदाय के भीतर एकजुटता और पहचान की भावना को बढ़ावा देती है जिसका प्रभाव राजनीति में बढ़ती सहभागिता एवं जनजागरूकता के रूप में देखने को मिलता है। जाति व्यवस्था कुछ हद तक विभिन्न सामाजिक समूहों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने में मदद कर सकती है। राजनीतिक दल अक्सर जातिगत भावनाओं का उपयोग मतदाताओं को लामबंद करने और अपने पक्ष में वोट देने के लिए भी प्रेरित करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान राजनीति में जातिवाद का अध्ययन कर इसके परिणामों एवं दुष्परिणामों को जानने का प्रयास किया गया है ।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत शोध -पत्र में द्वितीयक डेटा का उपयोग किया गया है जिसमें पत्र - पत्रिकाओं, शोध- पत्रों एवं पाठ्य-पुस्तकों के अध्ययन के उपरांत उपयुक्त डेटा को संग्रहित करने का प्रयास किया गया है, जो विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक पद्धति पर आधारित है।

शोध - विस्तार : भारतीय राजनीति में हमें जाति व्यवस्था का उल्लेख प्राचीनतम वैदिक ग्रंथ ऋग्वेद से प्राप्त होता है, जिसमें यह बताया गया है कि ऋग्वेद के दसवें मंडल में विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, उदर से वैश्य तथा पैर से शुद्र की उत्पत्ति हुई है। वैदिक काल में ही ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों के कार्यों का उल्लेख भी किया गया है। ब्राह्मण का कार्य सिर्फ धार्मिक कार्य था जो शिक्षा प्रदान करने तक ही सीमित था, क्षत्रियों का कार्य देश की रक्षा और शासन को संचालित करना था, वैश्य के कार्य कृषि एवं वाणिज्य तथा शूद्र के कार्य सेवा से संबंधित था। मूलतः जाति व्यवस्था अपने मौलिक रुप में उत्तर वैदिक काल में आना प्रारंभ हुआ, जब जन्म के आधार पर जाति का निर्धारण होने लगा जबकि उत्तर वैदिक काल के पूर्व वैदिक काल में यह जन्म के आधार पर नहीं था इसका मुख्य आधार कर्म होता था, जो व्यक्ति जिस प्रकार का कर्म करता था वही उसका वर्ण होता था। किंतु कालातंर में उत्तर वैदिक काल से जाति व्यवस्था में संकीर्णता आने लगी उच्च वर्ग निम्न वर्ग से अपने आपको भिन्न मानने लगे। छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व तक पहुंचते- पहुंचते जाति व्यवस्था और संकीर्ण हो गई अनेक जातियों का उद्गम हुआ और उन जातियों को छुआछात के साथ-साथ अस्पृश्य की श्रेणी में बांट दिया गया जिसके कारण समाज का एक वर्ग अपने आप को उच्च वर्ग से अलग समझने लगा पूर्व मध्यकाल आते-आते यह तनाव और बढ़ता चला गया और किसी भी सहयोग में निम्न वर्ग उच्च वर्ग के साथ खुश नहीं हो पाता था। जातीय भावना दक्षिण भारत में अधिक दिखाई पड़ने लगी, परिणामस्वरूप आधुनिक काल आते-आते उत्तर भारत ही नहीं दक्षिण भारत में भी जातिवाद की भावना बहुत बढ़ गई। यही कारण रहा है कि कारण देश के स्वतंत्रता संघर्ष में इनमें आपसी सांमजस्य की कमी देखने को मिला है। जहां कुछ वर्ग में दोष दिखाई देने लगा वहां निम्न वर्ग अपने आप को दूर करके आंदोलन की शक्ति को कमजोर कर रहे थे जिसके कारण भारत की स्वतंत्रता के लिए जो संघर्ष हो रहा था वह उतने शक्तिशाली तरीके से प्रस्तुत नहीं हो पा रहा था, जिसकी उस समय जरूरत थी। हालांकि 1947 में जब भारत आजाद हुआ तब संविधान के निर्माण में राजनीतिक संस्थाओं के संगठित होने पर राजनीति में लोगों की सहभागिता बढ़ी । धीरे-धीरे राजनीति में जातिवाद का प्रभाव बढ़ता गया। परिणामस्वरुप यदि वर्तमान राजनीति को जातीय राजनीति कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि भारतीय केंद्रीय राजनीति में भी जातिवाद अछूता नहीं रहा है। इस संबंध में **रजनी कोठारी** ने जातीवाद की राजनीति की चर्चा अपनी पुस्तक **कॉस्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स** में प्रतिपादित किया है, उनके अनुसार "भारत की जनता जातियों के आधार पर संगठित है न चाहते हुए भी राजनीति को जाति व्यवस्था का उपयोग करना पड़ता है"।

अतः राजनीति में जातिवाद का अर्थ जाति का राजनीतिकरण है अर्थात् जाति को अपने दायरे में खींचकर राजनीति उसे अपने काम में लाने का प्रयत्न करती है। दूसरी ओर राजनीति द्वारा जाति या बिरादरी को देश की व्यवस्था में भाग लेने का मौका मिलता है। प्रोफेसर रजनी कोठारी ने जाति प्रथा के तीन रूप प्रस्तुत किए हैं"[1]

1. लौकिक रूप

2. एकीकरण का रूप
3. जातिगत चेतना का बोध

1. **लौकिक रूप** – इस रूप में व्यापक दृष्टिकोण अपनाया गया है इसमें जातीय भेदभाव ऊँच – नीच, छूआछूत तथा रीति - रिवाज के द्वारा एक जाति अपने को अन्य जातियों से पृथक मानते हैं तथा राजनीति में एक जातियों का अन्य जातियों में आपसी प्रतिद्वद्ध अथवा होड सी लगी रहती है इसका उदाहरण बिहार विधानसभा चुनाव में देखने को मिलता है। जहां उच्चजातियां एवं निम्न जातियों में लगातार सत्ता प्राप्ति हेतु संघर्ष दिखाई पड़ता हैं। जनता शासन के दौरान दोनों ही मुख्य प्रतिनिधि पिछड़ी और अनुसूचित जातियों से ही आए हैं। वर्तमान परिदृश्य में देखा जाए तो पिछड़ी जातियों का ही वर्चस्व कायम है। किंतु यदि केंद्रीय राजनीति के स्तर से देखे तो देश की राजनीति पर किसी एक जाति का वर्चस्व नहीं रहा, कहीं ब्राह्मणों की जाति का बोलबाला रहा तो कहीं क्षत्रिय राजपूत का। पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जाति के नेता भी राजनीति में अपनी सशक्त भागीदारी भी सुनिश्चित कर रहे हैं।

2. **जाति व्यवस्था का एकीकृत रूप**- जाति व्यवस्था का एकीकृत रुप का आशय जाति का अपने समाज में जाति भावनाओं का आपसी जुडाव रहा है क्योंकि जाति तो जन्म से ही निर्धारित रहती है तथा जो आगे जाकर समाज में वृहद रुप लेकर राजनीति में भी अपने ही बिरादरी के साथ सम्मिलित होकर अन्य जातियों के समकक्ष बने रहने को तत्पर रहती हैं। उदाहरण स्वरूप उत्तर प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, राजस्थान के विधानसभा चुनाव में भी अपनी ही बिरादरी के जातियों के साथ जुड़ाव एवं समर्पण की भावना तथा सत्ता लोलुपता हेतु पिछड़ी जातियों एवं अनुसूचित जातियों एवं अगड़ी जातियों में आपसी प्रति भी देखने को मिलता है।

3. **जातिगत चेतना का बोध-** जातीय व्यवस्था में यह रूप चैतन्यता का बोध कराती है, जिसमें जातियां अन्य जातियों से श्रेष्ठ समझने लगती हैं तथा उनमें अपने जाति के प्रति मान प्रतिष्ठा की भावना भी जागृत होती है जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से भी अपनी जाति को प्रतिष्ठित समझते हुए अपनी पहचान को बनाए रखने के होड़ में लगी रहती है। निम्न वर्ग की जातियों में भी यही भावना रहती है और वह भी उच्च वर्ग की जातियों के साथ मिलजुलकर राजनीतिक एवं सामाजिक अधिकार प्राप्त करने को प्रयासरत हैं । जैसे- गुजरात के पाटीदार, बंगाल के महाष्यि, उत्तर प्रदेश की हरिजन समुदाय और राजस्थान की मीणा एवं जाट आदि। यदाकदा ऐसा भी देखने को व सुनने को मिलता है कि कतिपय जातियां अपने को श्रेष्ठ जाति सिद्ध करने के लिए पौराणिक पुरुषों से अपनी तुलना करने लगते हैं, अथवा प्रयत्न भी करते हैं।

केंद्रीय राजनीति में जातिवाद- "केंद्रीय राजनीति में जातिवाद का जन्म प्रारंभिक लोकसभा चुनाव के उपरांत ही प्रारंभ हो जाता है क्योंकि पहली लोकसभा चुनाव सामान्य उच्च जाति के प्रतिनिधियों तक सीमित था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पहले दो चुनाव में भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का लाभ प्राप्त करने में सफल रही जिसके कारण अन्य पिछड़ी जातियां उनके भेदभाव पूर्ण नीति और सुविधाओं की पहुंच से दूर रही जिसके कारण वह अपने वर्ग समूह को जातीय और क्षेत्रीय आधार पर जोड़ने का प्रयास करने लगी। यह परंपरा तीसरे लोकसभा चुनाव में दिखाई पड़ता है। धीरे-धीरे यही प्रवृत्ति क्षेत्रीय राजनीति की शक्ल प्राप्त कर लेता है, और स्थिति यहां तक पहुंच जाती है कि कोई भी राष्ट्रीय दल अपने दम पर सत्ता संचालन में असमर्थ हो जाती है। क्षेत्रीय राजनीतिक दल अपने सामाजिक समीकरण से लोकसभा चुनाव में भी क्षेत्र में विजय प्राप्त कर लेती हैं क्योंकि इस समूह में अपने ही वर्ग के किसी धनी बाहुबली या ऊंची पहुंच वाले व्यक्ति को इस वर्ग के लोगों का समर्थन ही नहीं उनके मत भी प्राप्त होते हैं। उनको यह पता होता है कि अपनी जीत के लिए अपनी जाति को साथ लेना सबसे बड़ी बात होती है। उदाहरण के तौर पर हाल ही में हुए उत्तर प्रदेश लोकसभा उपचुनाव, महाराष्ट्र, झारखंड, बिहार के चुनाव में इस प्रवृत्ति को देखने से पता चलता है कि कुछ वर्ग अपनी जाति के लोगों को ही प्रमुख स्थान देते हुए दिखाई पड़ते हैं। ऐसे में अगर उस समूह का व्यक्ति भले ही अयोग्य हो

लेकिन चुनाव में भागीदारी करता है तो उसको अपने हित समूह से आवश्यक मत प्राप्त हो जाते हैं जो भारतीय रणनीतिक विकास में बाधक सिद्ध हो सकते हैं।"[2]

क्षेत्रीय राजनीति में जातिवाद – "भारत में अभिजात्य राजनीतिक परम्परा के कारण क्षेत्रीय राजनीति का उत्कर्ष होता है, चूंकि प्रारंभिक निर्वाचन में ऐसे अभिजात्य समूह के लोगों को संसद में जाने का अवसर प्राप्त हुआ जो निर्वाचन के बाद कभी भी अपने क्षेत्र में दिखाई नहीं दिए, ऐसे में बिजली ,पानी , स्वास्थ्य एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं से जूझने के लिए कोई भी सहयोग नहीं मिलता, अगर उन्हीं के समूह का कोई अपराधी प्रवृत्ति का व्यक्ति या बाहुबली व्यक्ति उनकी समस्याओं के निराकरण में अपने बाहुबल का प्रयोग करता है तो भी उसे उसके लोग अपने सर आंखों पर ले लेते हैं । ऐसी स्थिति में निर्वाचन के समय उस बाहुबली को अपने मत मूल्य प्राप्त हो जाता है।"[3]

राज्य स्तरीय राजनीति में जातिवाद -माइकल ब्रेचर के अनुसार "अखिल भारतीय राजनीति की अपेक्षा राज्य स्तर की राजनीति पर जातिवाद का प्रभाव अधिक है"। बिहार, केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, हरियाणा राजस्थान और उत्तर भारत के राज्यों की राजनीति का अध्ययन किए बिना जातिगत गणित का विश्लेषण नहीं किया जा सकता। बिहार की राजनीति में राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ और यादव प्रमुख प्रतिस्पर्धी जातियां हैं। पृथक झारखंड की मांग एक जातीय मांग ही रही है ।

वहीं केरल में साम्यवादियों की सफलता इसी तरह कि कहानी को बयां करती है, उन्होंने इजवाहा जाति को अपने पीछे संगठित कर लिया। आंध्र प्रदेश की राजनीति कम्मा और रेड्डी जातियों के संघर्ष की कहानी है। महाराष्ट्र की राजनीति में मराठों, ब्राह्मणों, और महरो में लगातार राजनीतिक संघर्ष दिखा है। गुजरात की राजनीति में दो जातियां प्रभावित रही हैं- पाटीदार और क्षेत्रीय। लद्दाख में भी जातिय भावना से प्रेरित होकर एक अलग राज्य की माँग हो रही जो जातिवाद को राजनीति का एक ज्वलंत उदाहरण है।

राज्यों की राजनीति में जातिवाद की प्रवृत्ति - किसी भी जाति का प्रत्याशी उसी जाति के बाहुल्य वाले क्षेत्र में खड़ा किया जाता है और जातिगत भावनाओं का अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न किया जाए, ऐसे विशेष क्षेत्र में विशेष गुटबंदी की जाती है। चुनाव प्रचार के समय संयोजक जातिवाद का पूरा ध्यान रखते हैं, जिस जाति या समुदाय का उम्मीदवार होता है उसकी सफलता को तय करने के लिए एक-एक क्षेत्र को बांट दिया जाता है जिससे जातिवाद के तत्व अपने निर्णायक प्रभाव डाल सकें, जिसको निम्नलिखित रुप से देखा जा सकता है-

1 परोपकारी दृष्टिकोण - राजनीति में ऐसे भी क्षण आए हैं जो जातिवाद के विरुद्ध प्रारंभ हुए थे और अंत में एक जाति के रूप में परिवर्तित हो गए। उदाहरण के लिए दक्षिण भारत में लिंगायत और कबीर पंथी ,उत्तर में सिक्ख जिन्होंने ब्राह्मण, हिंदूवाद के विरुद्ध अपने संघर्ष को या आंदोलन को अपने जाति के लिए सार्थक सिद्ध किया।

2 **आधुनिकीकरण के साथ जातिवाद में वृद्धि** - राज्यों की राजनीति में जैसे-जैसे आधुनिकरण आया और समाजीकरण का विकास हुआ उसके साथ जातिवाद का प्रभाव भी बढ़ने लगा। इसी कारण मॉरिस जोन्स ने इसी बात का उल्लेख किया है कि भारतीयों में ज्यों ज्यों शहरीकरण बढ़ा है वहां के लोग प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से जातिगत सीमाओं में अधिक बदलते हुए दिखाई पड़ते हैं।

3 **परंपरागत रूप में बदलाव** – जातिवादी राजनीति में शक्ति बहुत महत्वपूर्ण रही है इसी कारण रजनी कोठारी ने कहा है कि "यह राजनीति नहीं है जो जाति परस्त हो गई है बल्कि जाति वह है जो राजनीति हो गई है"[4]

4 -**प्रभुत्वशाली जाति का सिद्धांत** - प्रभुत्वशाली जाति का सिद्धांत कई सार्थक रुपों में प्रकट हुआ है कैरोलियन एवं इलियट ने आंध्र प्रदेश में रेड्डी समाज के संदर्भ में प्रभु जाति शब्द का प्रयोग किया है। प्रभु जाति आधुनिक भारत में ऐतिहासिक विकास के रूप में देखा जा सकता है जिसमें बढ़ती हुई सदस्यता पूंजीगत स्त्रोत का बहुत बड़ा योगदान है।

5 **राजनीतिक निर्णय पर जाति का प्रभाव -** अक्सर ऐसा देखा गया है कि जिस क्षेत्र विशेष में राजनीतिक निर्वाचन होता है उस राजनीतिक क्षेत्र में उसे विशेष समूह की जाति का प्रभाव दिखाई पड़ता है,जिसका उदाहरण हमें उत्तर प्रदेश लोकसभा चुनाव में अयोध्या और आजमगढ़ की राजनीति में वहां की यादव बहुल और सरोज बहुल लोगों का बढ़ता प्रभाव देखने को मिला है।

6 **राज्यों में जातीय संगठन का सशक्त होना -** उत्तर भारत में ही नहीं दक्षिण भारत में भी जाति समुदाय एक संगठन के रूप में तथा शक्तिशाली रूप में दिखाई पड़ता है यहां पर अलग-अलग जातियों के अलग-अलग समूहों का निर्माण होता है, जो एक संगठित रूप में अपने विशेष जाति के लिए प्रभाव समूह का कार्य करता है।

7 **जातिगत नेतृत्व में आधुनिकरण का प्रयोग** – "राज्यों की राजनीति में नेतृत्व क्षमता का विकास आधुनिक मूल्यों पर आधारित होता है जिससे जाति की रक्षा की जा सके और उसके स्वरूप में आने वाले परिवर्तनों को पुन संगठित किया जा सके।

8 **अलग-अलग राज्यों में जातिवाद के अलग-अलग प्रभाव-** सामान्यतः राज्यों की राजनीति में जाति समुदाय के प्रभाव दो रूपों में दिखाई पड़ते हैं एक शक्ति धन के आधार पर दिखाई पडती है तो दूसरा जाति बहुलता के आधार पर दिखाई पड़ता है । इन दोनों रूपों में जाति की संख्या ही राजनीति को प्रमुखता से प्रभावित करती है।"[5]

निष्कर्ष : भारतीय राजनीति में जातिवाद संभावित सामाजिक विकास की सम्भावना को कम करने का काम करते है, जिससे संघर्ष और तनाव में वृद्धि होती दिखाई पड़ रही है। जो समरसता की प्रकृति को दूषित कर कुंठा को जन्म देती है, यही कुंठा लोकतंत्र को कमजोर करता है। वैश्विक लोकतंत्र सूचकांक की रिपोर्ट में भारत 10वें स्थान की गिरावट के साथ 53 वें स्थान पर पहुंच गया है। यह इस बात को दर्शाता है कि लोगों के हितों की अनदेखी की जा रही है कुछ ऐसे वर्ग है तो समाज को प्रगति के लिए तैयार ही नहीं करना चाहते वे उनकी यथा स्थिति का लाभ उठाकर अपने वोट बैंक की राजनीति करने में लगे होते है। लेकिन शायद उनको यह नहीं पता है कि समाज के प्रत्येक वर्ग के विकास से ही देश का विकास होगा। हाल ही में इलाहाबाद हाइकोर्ट के एक ऐतिहासिक फैसले को संज्ञान में लेते हुये योगी सरकार के साहसिक कदम ने जातीय आधार पर राजनीति को एक कड़ी चुनौती दी है जिसमें योगी सरकार द्वारा जातीय आधारित राजनीति, समाज और सामाजिक प्रदर्शन पर कड़ा प्रहार करते हुए सार्वजनिक स्थलों वाहनों एवं पुलिस दस्तावेजों में जातिगत संकेतों को प्रतिबंधित कर दिया। यह सामाजिक समरसता की दिशा में एक क्रांतिकारी पहल भी है। उत्तर प्रदेश की इस पहल को देश के अन्य हिस्सों में भी लागू करने की आवश्यकता है, जो राजनीति में अपनी गहरी जड़े जमा चुकी है। ऐसी व्यवस्था की जंजीरों को तोड़ देना चाहिए जिससे एक समतामूलक समाज की नींव रखी जा सके। भारत के प्रत्येक नागरिक को जाति, भाषा और धर्म की भावना से ऊपर उठकर विकास और प्रगति के लिए मतदान करना होगा तभी देश का विकास हो सकता है। जिसकी कल्पना भारत सरकार ने "सबका साथ - सबका –विकास, सबका- विश्वास" के साथ की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. त्रिवेदी डॉ. आर. एन. एवं राय डॉ. एम. पी. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था – 2005, पृष्ठ सं.-399 – 400.
2. डॉ. अशेष एव. श्री वास्तव अन्नपूर्णा भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, पृष्ठ सं.-257.
3. सुभाष काश्यप हमारी संसद – 2013, पृष्ठ सं.-66.
4. बसु डॉ. दुर्गादास भारत का संविधान – एक परिचय – 2001, पृष्ठ सं.-397.
5. कोठारी डॉ. रजनी पृष्ठ संख्या cast in Indian politics . P-8-13.
6. राज एक्सप्रेस, दैनिक समाचार पत्र, 26 सिंतबर 2025, पृष्ठ सं.-05.

•